वेदों में विज्ञान-३

आचार्य डॉ. उमेश यादव

पूर्व अंक में विचार किया गया कि अग्निहोत्र/देवयज्ञ से पर्यावरण में आये प्रदूषण को दूर करने में बड़ी भारी मदद मिलती है । इस विधा से विशेषत: इन् ५ दिशाओं में लाभ होता है ।

१. पर्यावरण की सुरक्षा २. वायुमंडल की पवित्रता ३. विविध रोगों का नाश ४. शारीरिक और मानसिक उन्नति होकर मानसिक बिमारियों से निजात पाना और ५. अन्य रोगों के निवारण में कारण ।

इससे निश्चित ही दीर्घायुष्य व स्वस्थायुष्य की प्राप्ति होती है । साथ ही हम यह भी पूरजोर समझते हैं कि भूमि-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण को कम करने में अग्निहोत्र अत्यन्त सहायक है । ऑक्सीजन (02) और कार्बन डाई-आक्साइड (CO2) को संतुलित बनाये रखने में यज्ञ अग्निहोत्र सर्वोत्तम उपयोगी है । इससे प्राकृतिक चक्र जैसे ऋतु चक्र, वर्षचक्र, अहोरात्र चक्र, सौर चक्र, चान्द्र चक्र आदि सब अपनी व्यवस्था के अनुसार अपने समय पर प्रवर्तित अर्थात् चलते रहते हैं । एक वेदमंत्र में तो इस चक्र धारा को भी एक प्राकृतिक यज्ञ की संज्ञा दी गयी ।

" यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म: शरद् हवि: ॥ ऋग्- १०.९०.६ , यजु- ३१.४-

इस् मंत्र में यही बताया गया कि प्राकृतिक रुप से वर्षचक्र रुपी यज्ञ में मानो वसन्त ऋतु घी है , ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद ऋतु हव्य । सामान्य यज्ञ अग्निहोत्र में भी तो हम घी, समिधा तथा हव्य=हलवा आदि हव्य पदार्थ ही डालते हैं जिससे

वातावरण का सामान्य हिस्सा प्रभावित होता है । प्राकृतिक रुप से ईश्वरीय व्यवस्था में यह ऋतु चक्र स्वयं ही वर्ष में पूरा होता रहता है और पूर्ण प्रकृति को प्रभावित करता है । संसार में मनुष्यादि अन्य प्राणियों के रहने से पर्यावरण या वातावरण में प्रदूषण भी बढ़ता रहता है जिसके निवारण के लिये हम मनुष्यों को अग्निहोत्र करने का विधान बताया गया । हम सब मनुष्य कम से कम उतना अग्निहोत्र अवश्य करें जितना हम अपने निजी शरीर से मल-मूत्र, पसीना, थूक आदि प्रक्रियाओं द्वारा प्रदूषण फैलाते हैं । तभी महर्षि दयानन्द संस्थापक आर्य समाज ने शास्त्रों के आधार पर बताया कि हर मनुष्य को कम से कम अग्निहोत्र में १६ आहुतियाँ अवश्य डालनी चाहिये ।

थोड़ा विचार करें- घी, समिधा और् हव्य ये तीन ही को हम हवन में डालते हैं जिससे जो सुगन्धि निकलती है वह अनेक शुद्धिकारक गैसों से युक्त होती है । कई प्रकार के ऐसे गैस निकलते हैं जो वातावरण के रोग कारक किटाणुओं को मारने में सहायक है । वसन्त, शरद, ग्रीष्म, वर्षा व फिर वसन्त यही तो वर्ष चक्र है ।

वेदों व् वैदिक साहित्यों में ऋतुओं के अनुसार हवन सामग्री बनाने की विधि बतायी गयी है । सामग्री में मिली सब औषधियाँ प्रदूषण को दूर करने में तथा स्वस्थ वातावरण बनाने में उपयोगी है । पर ये औषधियाँ अग्नि में जलकर् गैस रुप परिवर्तित होकर वातावरण के रोग कारक वायरस, वैक्टेरियाज अर्थात् जीवाणुओं को मार कर पर्यावरण को स्वच्छ बनाती है ।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:-यजु-२३.६२- यह यज्ञ सम्पूर्ण विश्व का केन्द्र (न्युक्लियस) है ।

जैसा कि उल्लेख किया गया कि सूर्य, चन्द्र व अन्य सब ग्रह-उपग्रह प्राकृतिक यज्ञ का हिस्सा हैं । सब ऋतुओं से मिलकर अपना यज्ञ-रुप पूरा करते हैं तभी वेद

में वसन्त को घी, ग्रीष्म को समिधा व शरद को हवि कहा । जैसे ये ऋतुयें अपनी तासीर से सम्पूर्ण वातावरण को संतुलित रखती हैं वैसे ही सामान्य अग्निहोत्र से उठती लपटें, ताप, सुगन्धि व इससे उत्पन्न कई महत्त्वपूर्ण गैसें जलवायु को संतुलित करने में मददगार है । यज्ञ से वर्षा होती है । "यज्ञात् भवति पर्जन्य: भगवत गीता में वर्णित है जो सार्थक है । यज्ञ से मेघ और मेघ से वर्षा । समिधा पर घी डलने से गरमी/ताप बड़ जाती है । उससे वाष्प बनता है, फिर वही वाष्प मेघ बनाने में मदद करता है और फिर मेघ ताप से पिघलकर वर्षा के रुप में
पृथिवी पर वरसने लगता है ।

इसी तरह वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु व शरद ऋतु सब मिलकर समुद्र के जल कण को वाष्पीकृत करके आकाश पहुँचाते हैं और फिर सूर्य के ताप से उसे पुन: पिघलाकर वर्षारुप में धरती पर लाते हैं । सूर्य चन्द्र आदि की गति से पूरे वातावरण में अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग तापमान होता है । अत्: जल कहीं गैस रुप तो कहीं ठोस बर्फरुप बनता है और यहीं फिर कहीं जल रुप बन जाता है । ऋग्वेद १.१६४.५१ में कहा गया- भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति, दिवं जिन्वन्त्यग्नय: ॥ अर्थात् अग्निहोत्र से सूर्यलोक व पृथिवी लोक तृप्त हो जाते हैं । सूर्यलोक में अग्नि तत्त्व का बाहुल्य व पृथिवी लोक में वर्षा जल तत्त्व का बाहुल्य होता है । यज्ञ की अग्नि ऊपर जाती है जो सूर्यलोक की ओर जाती है और जल समुद्र की ओर अर्थात् पृथिवी लोक में उतरता है । यही यज्ञात्मक अग्निहोत्र का विज्ञान है । इसे ही "अग्निषोमात्मकं जगत्" कहा जाता है । जगत अग्नि और सोम/जल का समन्व्य है ।

यजुर्वेद १८.९ में बोला गया-" कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे.... यज्ञेन कल्पताम्" इस मंत्र का पूरा अर्थ समझने से हमें ज्ञान होता है कि यज्ञ से सर्वलोक शुद्ध होते हैं । सुखों
की वृद्धि होती है । जहाँ प्रदूषण दूर होते हैं वहीं शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उन्नति भी होती है क्योंकि मंत्रों में नैतिक मूल्यों को सुधारने की प्रेरणा भी भरपूर

मात्रा में उपलब्ध है । यजुर्वेद के १८वाँ अध्याय के १-२९ मंत्रों में साकारात्मक ऊर्जा, दीर्घायुष्य, वृक्ष-वनस्पति-विज्ञान, औषधि व आयुर्वेद, अन्नसमृद्धि, बौद्धिक व आत्मिक विकास, शारीरिक पुष्टि, नीरोगता, प्रदूषण-नाशन आदि का वर्णन विस्तार से पाया जाता है ।

छान्दोग्योपनिषद् ४.१६.१ में स्पष्ट बताया कि अग्निहोत्र से पर्यावरण के समस्त प्रदूषण दूर होते हैं जिससे सब प्राणियों के लिये सुखों की वृद्धि है । "एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते । इदं सर्वं पुनाति, तस्मादेष एव यज्ञ: ।"

इसी तरह ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मुक्तकंठों से अग्निहोत्र व अन्य सभी प्रकार के व्यावाहारिक यज्ञ-सूत्रों का वर्णन है ।

-यज्ञो वै भुवनस्य नाभि:- तैत्तिरीय ब्राह्मण्-३.९..५.५
- यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति- शतपथ ब्रा. ९.४.१.११
- भुज्यु: सुपर्णो यज्ञ:- यजु. १८.४२.
- यज्ञो वा अवति- तांड्य ब्रा. ६.४.५
- भैषज्ययज्ञा वा एते, ऋतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते ।- गोपथ ब्राह्मण उप्. १.१९
- अयं वै यज्ञो योऽयं पवते - ऐतरेय ब्राह्मण- ५.३३

इनका विस्तार आगे के अंकों में सम्भावित है । अग्निहोत्र में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों का विज्ञान हम समझेंगे । घी, सामग्री, समिधा, हवि आदि के प्रकार व गुणों को विस्तार से समझने का प्रयत्न करेंगे । अस्तु ।